International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 2, February 2018
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

मनुस्मृति में नीति तत्त्व विमर्श

अपर्णा
शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ।

'नीति' की उत्पत्ति नीति एवं शास्त्र के संयुक्त मेल से हुई है।[1] नीति शब्द की व्युत्पत्ति 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय से हुई है। 'नी' शब्द का आशय है ले जाना अथवा दिग्दर्शन है। इस प्रकार जो किसी निदृष्ट स्थान की ओर ले जाने का मार्ग दिखाता है उसे नीति कहते हैं। 'शास' धातु से शास्त्र शब्द बना है। शास्त्र शब्द से आशय है सीखना या सिखाना। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिसके द्वारा हम कुछ सीखते हैं, वह शास्त्र कहलाता है। अतः कहा जा सकता है कि जो शास्त्र उचित मार्ग पर ले जाए उसे नीतिशास्त्र कहते हैं। उचित मार्ग वह है जिससे मनुष्य का जीवन सुखमय, आनन्दमय होता है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए ज्ञान के साथ नैतिकता अत्यावश्यक है। नैतिकता के कारण ही विश्वास में दृढ़ता और समझ में प्रखरता आती है। नैतिकता ही वह गुण है जो व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने में मदद करता है।[2] भारतीय सामाजिक व्यवस्था ''सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय और सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः पर आधारित है। समाज के माध्यम से ही मनुष्य नैतिक आदर्शों को प्राप्त करता है, नैतिकता, सामाजिक जीवन को सुगम बनाती है और अप्रत्यक्ष रूप से समाज को नियंत्रित रखती है। सामाजिक मानदंडों के माध्यम से ही समाज, व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन करता है। इसीलिए नीतिशास्त्र को सामाजिक संरचना का एक प्रमुख अंग माना जाता है।[3] नैतिक गुणों अथवा मानवीय मूल्यों या नीतियों पर यदि विचार करें तो नीतियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं– एक व्यक्तिपरक नीतियाँ– मन, वचन, कर्म, विवेक, ज्ञान, आदि और दूसरी समाज परक नीतियाँ यथा–समत्त्व भावना, मैत्री, सत्संगति, दान, धर्म, परोपकार, सदाचरण, सद्व्यवहार आदि।

मनुस्मृति में इन सभी प्रकार के नैतिक एवं मानवीय गुणों का उद्घोष तथा इसमें प्रवृत्ति का प्रोत्साहन उपलब्ध होता है। मनुस्मृति में सभी नीतिपरक नियमों, कर्त्तव्यों, शुद्धाचरण आदि के अनुकरण एवं अनुसरण की विशिष्टता का भी प्रतिपादन हुआ है। मनुस्मृति में सम्पूर्ण धर्म कर्मों के गुण–दोष हैं और चारों वर्णों के धर्म एवं आचार भी कहे गये हैं। वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार ही परमधर्म है **'आचारः परमो धर्मः'**[4] इसलिए आत्मोन्नति चाहने वाले व्यक्ति को हमेशा आचार युक्त रहना चाहिए। मनु ने आचार से ही सब धर्मों की गति देखकर आचार को ही सभी तपों का मूल माना है–

'सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्।'[5]

मनुस्मृति में सद्व्यवहार का प्रतिपादन करते हुए मनु ने कहा है–

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।

शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत।।[6]

नित्य बड़ों की सेवा और अभिवादन करने वाले पुरुष की आयु, विद्या, यश और बल ये चार पदार्थ बढ़ते हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।[7]

मनु ने अहिंसा परमोधर्मः की धारा में ही प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करते हुए कहा है कि प्राणियों के कल्याण हेतु अहिंसा से ही अनुशासन करना श्रेष्ठ है। 'अहिंसयैव भूतानां कार्यश्रेयोऽनुशासनम्[8] मनु ने मानवता के मूल्यों को बनाए रखने के लिए कहा है कि स्वयं दुःखी होते हुए भी किसी की आत्मा को न दुखावे, परद्रोह की बुद्धि भी न रखें और ऐसे वचन (कटु वचन) को न बोलें जिससे दूसरे को कष्ट हो।[9]

गुरू–शिष्य आदर परम्परा पर प्रकाश डालते हुए मनु ने कहा है कि गुरू का नाम परोक्ष में भी न लेवे और गुरू के चलने, बोलने या किसी प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं की नकल न करें।[10] जहाँ गुरू का उपहास अथवा निन्दा होता हो वहाँ कानों को बन्द कर लेवें अथवा अन्यत्र चले जायें।[11]

मनु ने गुरूजनों के आदर एवं सम्मान के मूल्यों की शिक्षा देते हुये कहा है कि दुखी होने पर भी आचार्य, पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता इन लोगों का अपमान नहीं करना चाहिए।[12] माता–पिता और आचार्य को हमेशा प्रसन्न रखने का उपदेश मनु ने दिया है उनके अनुसार इन तीनों के प्रसन्न रहने से सभी तपस्या पूर्ण हो जाती है।[13] मनु ने माता–पिता तथा गुरू सेवा को ही पुरुष का परम कर्त्तव्य माना है। उनके अनुसार पुरुष का मन वचन कर्म से माता–पिता गुरुजनों की सेवा करना कर्त्तव्य है, इन तीनों की सेवा ही साक्षात् धर्म है।[14] मनुष्य एक सामाजक प्राणी है। परिवार समाज की इकाई है। परिवार निर्माण में विवाह का महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य स्थान है। मनु ने आठ प्रकार के विवाह बताए हैं जो इस प्रकार है–

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथाऽऽसुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टोऽधमः।।[15]

मनु ने मानव जीवन को नैतिक मूल्यों में बाँधने हेतु वर्णाश्रम व्यवस्था का विवेचन करते हुए मानव जीवन को चार भागों में बाँटा है–

(1) ब्रह्मचर्याश्रम (2) गृहस्थाश्रम (3) संन्यासाश्रम (4) वानप्रस्थ।

मनुस्मृति में मनु ने नैतिकता पर अत्यधिक बल देते हुए मानव समाज को नैतिकता के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी है। उन्होंने करने योग्य और न करने योग्य दोनों ही कर्मों की विस्तृत व्याख्या दी है। मनु ने अनैतिक कर्मों को घोर पाप बताया है–

वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः

अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम्।

हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।

यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्।।[16]

मनुस्मृति में दण्ड व्यवस्था के अंकुश द्वारा चारो वर्णों की प्रजा रूपी हाथी को सीधी राह पर चलाने अर्थात् सन्मार्ग पर चलाने हेतु दण्ड भय के प्रयोग द्वारा विशेष बल दिया गया है।

महर्षि मनु कहते हैं कि सदा सत्य, धर्म, सदाचार और पवित्रता में लगे रहना चाहिए। जो अर्थ, काम, धर्म के विरुद्ध हो उन्हें त्याग देना चाहिए और ऐसे धर्म को भी नहीं करना चाहिए; जिससे पीछे दुःख हो, लोगों को कष्ट देने वाला कार्य नहीं करना चाहिए। महर्षि मनु ने साधारण मनुष्य से लेकर राजा तक सभी के लिए नैतिकता एवं आचार की व्यवस्था तथा विस्तृत विवेचना किया है। महर्षि मनु ने आचार अर्थात् नीति को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रदाता अभिहित किया है। मनु ने सदाचार पालन करने की शिक्षा देते हुए कहा है कि श्रुति और स्मृति में कहे हुए सदाचार जो अपने कर्म में सम्यक् रूप से मिले हुए

हैं और जो धर्म के मूल हैं, निरालस्य होकर उनका पालन करना चाहिए। आचार से आयु की वृद्धि होती है, आचार से अक्षय धनलाभ होता है। आचार से अशुभ लक्षणों का नाश होता है।[17] मनुस्मृति में सदाचार, सत्कर्म और सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया गया है। मनुस्मृति का वर्ण्य विषय जीवन के किसी पक्ष से अछूता नहीं रहा है। इसकी विषय–वस्तु की अभिव्यंजना नैतिकता की ओर प्रेरित एवं अग्रसर करती है। आज भी इसके अधिकांश नियम प्रासंगिक हैं। मनुस्मृति समत्व की ओर प्रेरित करती है। मनु ने समभाव के द्वारा परम पद ब्रह्मत्व को प्राप्त करने की बात कही है जो इस प्रकार है–

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।

स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्।।18

मनुस्मृति करणीय कर्म अर्थात् सत्कर्म का पोषक एवं इसके विपरीत दुष्कर्म के प्रति कठोर विधि व्यवस्था का पक्षधर है। मनुस्मृति को धर्मशास्त्र की अपेक्षा नीतिशास्त्र की संज्ञा से अभिहित करना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, डा0 ह्रदयनारायणः नीतिशास्त्र (सिद्धान्त तथा प्रयोग)
2. पालिवाङ्मय में बोधिसत्व सिद्धान्त, डॉ0 भदंत सावंगी मेधंकर, बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2000, पृ0 123
3. मनुस्मृति–92/6, अनु0 हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, वैदिक धर्मशास्त्र प्रकाश संस्था, दिल्ली,सं0 2016
4. मनुस्मृति 108/1 आचार्य श्री पं0 शंकर दयाल त्रिपाठी, श्रीदुर्गा पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद।
5. वही 110/1
6 वही 119/2
7 वही 121/2
8 वही 152/2
9 वही 161/2
10 वही 199/2
11 वही 200/2
12 वही 225/2
13 वही 228/2
14 वही 237/2
15 वही 21/3
16 वही 113, 114/4
17 वही 155/156/4
18 वही 125/10